वामन पुराण

वामन पुराण

[प्रथम खण्ड]

(सरल हिन्दी व्याख्या सहित जनोपयोगी संस्करण)

❀

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, योग वासिष्ठ, २० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार, और लगभग १५० हिन्दी ग्रन्थों के रचियिता।

❀

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर) बरेली–२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं० ७४२४२

प्रकाशक :

डॉ० चमन लाल गौतम

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली २४३००३ (उ० प्र०)

फोन : ७४२४२

❀

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❀

❀

संशोधित जनोपयोगी संस्करण

सन् १९८७

❀

मुद्रक :

शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस,

भीकचन्द मार्ग, मथुरा।

मूल्य :

उन्नीस रुपये मात्र

उन्नीस रुपये मात्र

भूमिका

अठारह पुराणों की जो सूचियाँ विभिन्न धर्म ग्रन्थों में दी गई हैं उनमें वामन पुराण का नम्बर चौदहवाँ है। पर इससे यह निष्कर्ष नहीं निकला कि यह अन्य पुराणों की अपेक्षा कम महत्व का है। यद्यपि इसका आकार छोटा ही है पर इसमें पुराणों के सभी अंगों का यथोचित वर्णन किया गया है और इसकी प्रतिपादन शैली अनेक पुराणों और उन पुराणों से अधिक स्पष्ट और विवेचनापूर्ण है। इसकी एक विशेषता यह है कि इसमें जो प्रसिद्ध पौराणिक उपाख्यान दिये हैं, उनमें अन्य पुराणों से आश्चर्यजनक भिन्नता है। कहीं-कहीं तो पुराण लेखक ने कई-कई कथाओं को मिलाकर एक नई कथा ही रच डाली है।

इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यद्यपि यह एक शैव-पुराण के रूप में प्रसिद्ध है,पर इसमें विष्णु को कहीं उस तरह नीचा नहीं दिखाया गया है, जैसे कई अन्य पुराणों में मिलता है। इसमें इन दोनों को भी समान दर्जे पर माना गया है। साथ ही इसमें कहीं भी कोई ऐसा श्लोक नहीं मिलता जिसमें विष्णु की निन्दा की गई हो। जब कि कुछ शैव लेखक यहाँ तक लिख गये हैं कि 'विष्णु दर्शन मात्रेण शिव द्रोहः प्रजायते'' (विष्णु के दर्शन करने से शिव का द्रोह होता है) वहाँ 'वामन पुराण' में कई बार शिवजी विष्णु के समक्ष सहायतार्थ पहुँचे हैं और उनकी बड़ी स्तुति की है।

दक्ष यज्ञ और सती की कथा–

वामन पुराण की जिन कथाओं में अन्य पुराणों से पृथकता पाई जाती है उनमें सब से अधिक ध्यान आकर्षित करने वाली कथा सती के देह त्याग की है। शिव पुराण, रामायण तथा अन्य सब पुराण-ग्रन्थों में हम यही पढ़ते आये थे कि शिव-भार्या सती निमंत्रण न आने पर भी अपने पिता दक्ष के यज्ञ में गई थी और जब उसने वहाँ शिव का भाग न देखा तो वह वहाँ उपस्थित सब लोगों को अभिशाप देती हुई जलकर भस्म हो गई। यह समाचार सुनकर शिव

जी ने वीरभद्र को भेजा, जिसने दक्ष के यहाँ पहुँचकर उसके यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

पर 'वामन पुराण' में यह कथानक दूसरे ही रूप में दिया गया है। उसमें कहा गया है कि दक्ष-यज्ञ में शिवजी की उपेक्षा की बात सुनते ही सती का देहान्त हो गया। इसका वर्णन करते हुए 'हरि-वीरभद्र युद्ध" नामक चतुर्थ अध्याय में कहा गया है—

"गौतम नन्दिनी जया सती देवी के दर्शन करने मन्दराचल पर गई। उसे अकेली आया देखकर सती ने पूछा कि उसकी बहिनें-विजया जयन्ती और अपराजिता क्यों नहीं आई जया ने उत्तर दिया कि "वे पिताजी के साथ मातामह (नाना) के यज्ञ में गई हैं। मैं भी वहीं जा रही थी, पर आपका दर्शन करने इधर चली आई। क्या आप वहाँ नहीं चल रही हैं तथा देव महेश्वर भी वहाँ नहीं जा रहे हैं? सभी ऋषि-गण तथा ऋषि-पत्नियाँ वहाँ गई हैं तथा सभी देवगण भी गये हैं। क्या नाना जी ने आपको आमन्त्रित नहीं किया?"

अपने पति की इस प्रकार अवज्ञा होते देख कर और वह भी अपने पिता के ही द्वारा, सती को इतना शोक और क्रोध हुआ कि वह उसी समय भूमि पर गिर कर पंचत्व को प्राप्त हो गई। इसके पश्चात् जया का रुदन सुनकर भगवान् शंकर आये और इस प्रकार सती का निधन देख कर महा क्रोधित हुये। उन्होंने उसी समय ही गणों का एक बहुत बड़ा दल तैयार करके वीरभद्र की अधीनता में दक्ष यज्ञ में भेजा और घोर युद्ध करके उसे नष्ट करा दिया।

काम दहन की कथा—

इसी प्रकार 'काम-दहन' की कथा में भी सर्वथा नई बातें कही गई है। सामान्य रूप से इस कथा में यह कहा गया है कि जब तारकासुर ने देवगण को पराजित कर दिया और उनको यह मालुम हुआ कि शंकर भगवान् के पुत्र के अतिरिक्त और कोई इसे नहीं मार सकेगा, तो इन्द्र ने कामदेव को भेजा जिससे वह शिवजी के मन को चलायमान

करके पार्वती के साथ विवाह करने को प्रेरित करे। पर जब वह शिवजी पर अपने बाण चलाने लगा तो उन्होंने क्रोधित होकर तीसरे नेत्र से उसे भस्म कर दिया।

पर 'वामन पुराण' की कथा में कहा गया है कि जिस समय शिवजी दक्ष-यज्ञ को ध्वंस कर रहे थे तो मदन ने उन पर 'उन्माद' 'संताप' 'विजृम्भण' शरों को चलाया जिससे उनकी दशा विक्षिप्तों की सी हो गई और वे निरन्तर कामाग्नि में जलते हुए सती के लिए विलाप करने लगे। जब वे अत्यन्त व्यथित हो गये तो उन्होंने उन तीनों बाणों को कुवेर के पुत्र पाञ्चालिक को दिया। जब कन्दर्प उन पर पुनः प्रहार करने को प्रस्तुत हुआ तो वे उसके भय से भाग खड़े हुए और अनेक स्थानों में होकर दारु वन में प्रवेश कर गये। वहाँ ऋषियों की पत्नियाँ उनको देखकर क्षोभित हो गई और कामेच्छा से उनके पीछे चलने लगीं। इस पर ऋषियों ने उनको शाप दिया कि तुम्हारा लिंग गिर जाय, वह लिंग जब गिरा तो आकाश से पाताल तक व्याप्त हो गया। ब्रह्मा और विष्णु दोनों उस स्थान पर आये और ऊपर तथा नीचे की तरफ जाकर उस लिंग का आदि अन्त देखने का प्रयत्न करने लगे। पर जब कहीं उसका आदि अन्त नहीं मिला, तो दोनों मिल कर शिवजी की स्तुति करने लगे। उससे सन्तुष्ट होकर शिवजी ने कहा कि यदि सब देवगण इस लिंग की अर्चना करेंगे तो मैं इसे पुनः ग्रहण कर लूँगा। इस पर भगवान विष्णु ने चारों वर्णों द्वारा शिव लिंग की पूजा का विधान किया। इसके लिए नाना प्रकार की शक्तियों से विहित अनेक प्रमुख शास्त्रों की भी रचना की गई। इनमें प्रथम शैव नाम से विख्यात है, दूसरा पाशुपत है, तीसरा कालदमन और चौथा कापालिक है। शिव स्वयं शक्ति हैं, जो वसिष्ठ के पुत्र थे। उसका शिष्य 'गोपायन तप को ही महान् धन समझने वाले भारद्वाज महा पाशुपत थे। उनका शिष्य सोमकेश्वर नाम वाला राजा हुआ। आपस्तम्ब भगवान् कालास्य थे, उनका शिष्य कामेश्वर हुआ। धनद भी महान् व्रत वाला था जिसका

शिष्य आर्योदर अत्यन्त वीर्यवान था। जाति से शूद्र था, किन्तु महान् तपस्वी था। इस प्रकार भगवान् विष्णु ने चारों वर्णों और चारों आश्रमों को भगवान् शिव का पूजने वाला बना दिया।"

इसके पश्चात् जब भगवान शंकर चित्रवन में विचरण कर रहे थे तब कामदेव ने पुनः उन पर आक्रमण करने की तैयारी की थी। इस पर उन्होंने उसे क्रोध की दृष्टि से सिर से पैर तक देखा जिससे वह तुरन्त भस्म हो गया। अन्य ग्रन्थों में लिखा है कि भस्म होने के पश्चात् वह अनंग नाम से विख्यात हुआ और अपना प्रभाव सभी जीवधारियों पर प्रकट करता रहा। पर 'वामन पुराण' में कहा है कि दग्ध हो जाने के पश्चात् वह पाँच पौधों के रूप में परिणत हो गया जिनके नाम हैं— द्रुक्मपृष्ठ, चम्पक, वकुल, पाटस्या, जातीपुष्प। कामदेव ने जो बाण छोड़े थे वे फलों के सहस्रों प्रकार के वृक्ष हो गये।

काम-वासना तो वास्तव में एक अशरीरी शक्ति है जो समय-समय पर मनुष्य की मनोवृत्तियों को विचलित करती रहती है। उसके बाणों द्वारा शिवजी का व्यथित होना अलंकारिक रूप का वर्णन ही समझा जा सकता है। 'वामन पुराण' में कामदेव के सहायक बसन्त का जैसा काव्यमय रूपक रचा गया है और अन्त में उसे जिस प्रकार इस देश के प्रसिद्ध सुगन्धित पुष्पों के रूप में परिणित होना बताया गया है उससे यह समस्त वर्णन एक सुन्दर साहित्यिक रचना ही माना जायगा। 'कामदेव' अथवा 'मदन' की कल्पना सृष्टि विस्तार और प्रजा की उत्पत्ति का एक स्वाभाविक अंश है और भारतीय तथा विदेशी पुराण-ग्रन्थों में इसे अनेक प्रकार से लिखा गया है।

भारत वर्ष का भौगोलिक वर्णन–

'सप्त द्वीप' का वर्णन भी पुराणों का एक आवश्यकीय वर्ण्य—विषय माना गया है। पुराने समय में आवागमन की कठिनाइयों के कारण लोगों को समस्त भारत वर्ष का भ्रमण कर लेना ही एक बहुत बड़ी बात समझी जाती है। इसलिए उस समय 'सप्त द्वीप" का जो

वर्णन लिखा गया है वह आज प्रत्यक्ष कहीं दिखाई नहीं पड़ता। केवल 'जम्बू द्वीप' की समता किसी प्रकार 'एशिया' से की जा सकती है। ऐसी दशा में वामन पुराणकार ने भारत वर्ष के विभिन्न प्रदेशों और यहाँ के पर्वत तथा नदियों का जो विस्तृत विवरण दिया है वह काफी महत्वपूर्ण है। उसमें बहुत से नाम यद्यपि बदले हुए हैं और कुछ काल्पनिक अथवा सुने सुनाये भी हो सकते हैं, तो भी प्राचीन तत्वों की खोज करने वालों के लिए वे काम के अवश्य हैं।

भारत वर्ष के पर्वतों का वर्णन करते हुए लिखा है कि "महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष पर्वत, विन्ध्य, और परियात्र—ये सात 'कुलाचल' (मूल) कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रों पर्वत श्रेणियाँ भी यहाँ हैं जिनमें कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दुर्धराचल, वातधूम, वैद्युत, मैनाक, सरस, तुङ्ग, प्रस्थ, नागगिरि तथा गोवर्धन पर्वत यहाँ हैं। इनके अतिरिक्त उज्जमन्त, पुष्पगिरि, अर्बुद, रैवत, ऋष्यमूक, सगोमन्त, चित्रकूट, कृतस्मर, श्री पर्वत, कौंकणक आदि सैकड़ों पर्वत पाये जाते हैं।

नदियों का वर्णन करते हुए कहा है कि "सरस्वती, पञ्चरूपा, कालिन्दी, हिरण्वती शतद्रु, चन्द्रिका, नीला, वितस्ता इरावती, कुहू, मधुरा, हाररावी, उशीरा, धातकी, रसा, गोमती, धूतपापा, बहुदा, दृषद्वती, निःस्वार, गण्डकी, चित्रा, कौशिकी, वधूसरा, सरयू, सलौहित्या आदि नदियाँ हिमालय पर्वत के नीचे से आती हैं। इनके अतिरिक्त वेणुपर्णासा, नन्दिनी, पावनी मही, शरा, चर्मण्वती, लूपा, विदिशा, वेणुमती, चित्रा, ओघवती, रम्या आदि नदियाँ पर्वत से उत्पन्न होने वाली हैं। परियात्र सोन नदी, महा नदी, नर्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशा, चित्रकूट, देविक, चित्रोत्पला, तमसा, करतोया, पिशाचिका, पिप्पल श्रेणी, विपाशा, वंजुलाती, सत्सन्तजा, शुक्तिमती, चक्रिणी त्रिदिवा, वसु आदि सरितायें ऋक्ष—पर्वत के नीचे से बहने वाली हैं। वल्गुवाहिनी, शिवा, पयोष्णी निर्विन्ध्या, तापी, सनिषधावती, वेणा, वैतरणी, सिनीबाहु, कुमुद्वती, तोपा रेवा, महागौरी, दुर्गन्धा, वाशिला

आदि विन्ध्याचल के नीचे से आने वाली नदियाँ हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेण्या, सरिद्वती, विशमद्री, सुप्रयोगा, वाह्या कावेरी, दुग्धोदा, नलिनी, वारिसेना, कलस्वना ये सब बड़ी-बड़ी नदियाँ सह्य, पर्वत के पाद से उद्‌भूत होती हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, बञ्जुला, उत्पलावनी, शुनी, सुदामा आदि शुक्तिमान पर्वत से आती हैं। ये सब सरितायें परम पुण्यदायक, सरस्वती स्वरूप, जगत् माताएँ और सागर की पत्नियाँ हैं।"

इससे आगे चलकर भारत के विभिन्न प्रदेशों तथा उनमें रहने वाली जातियों के नाम गिनाये हैं। पहले दूरवर्ती प्रदेशों के विषय में कहा है कि "कुशूद्र, किल कुण्डल, पञ्चालक, कौशिक, वृक, शक, बर्बर, कौरव, कलिंग बंग, अंग आदि जनपद हैं। इनमें मर्मक, मध्यदेशीय आभीर, शढ्य धानंक, वह्लीक, बाटधान, कालतोपद, अपरान्त शूद्र, पल्लव, सखेटक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, भद्रक, शातद्रव, ललित्थ, पारावत, समूषक माठरोद, काधार, कैकेय, दशन आदि जातियाँ रहती हैं। इनमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वंशों के लोग भी हैं। इनके अतिरिक्त काम्बोज, दरद, बर्दर, आंग लोकिका, वेण, तुषार, वहुधा, बाह्यतोदर, आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, दशेरक, लम्पक, तावकाराम, चूडिक, तंगड, अलस, अलिभद्र ये सब किरात लोगों की जातियाँ हैं।" किरात जातियों से आशय विशेषतः उन अर्द्धसभ्य पहाड़ी जातियों से है जो मध्यप्रदेश तथा आसाम आदि में पाई जाती है।

इसके बाद भारतवर्ष से चारों दिशाओं में उस समय पाये जाने वाले जनपदों (राज्य और प्रजातन्त्र शासन) की लम्बी सूची दी गई है, जिनमें से वर्तमान काल में बहुत थोड़े उन नामों से पहचाने जा सकते हैं। फिर भी उन सबका अन्यान्य ग्रन्थों और लेखों से मिलान करने पर देश की प्राचीन भौगोलिक तथा राजनीतिक स्थिति पर बहुत प्रकाश पड़ सकता है।

सदाचार की महिमा–

आगे चल कर सभी जातियों और आश्रमों के धर्मों का वर्णन

करते हुए सर्वोपरि धर्म सदाचार को बताया है, जिसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता। इसकी महिमा बतलाते हुए कहा है कि "यदि कोई मनुष्य सदाचारी नहीं है तो उसके द्वारा किया जाने वाला यज्ञ, दान, तप सब कुछ व्यर्थ है। दूषित आचरण वाला व्यक्ति न तो इस लोक में और न परलोक में सुख शान्ति प्राप्त कर सकता है। यह सदाचार एक ऐसा वृक्ष है कि जिसका मूल धर्म है। शाखायें धन हैं, पुष्प कामनाएँ हैं और मोक्ष फल है।" इस प्रसंग में ऋषियों ने प्रातः काल उठ कर जो 'मंगल स्तोत्र' पाठ करने को बताया है, वह भी बड़ा महत्वपूर्ण है। उसमें विराट् विश्व और भारतीय धर्म तथा राष्ट्र के सभी महान् तत्वों का उल्लेख है जिनसे प्रत्येक मनुष्य श्रेष्ठ प्रेरणायें ग्रहण कर सकता है—

"ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि देवगण, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि—ये सातों शुभ ग्रह—भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन और ऋभु—ये सब महर्षि गण मेरा प्रभात मंगलमय करें। सनत्कुमार, सनक सनन्दन, सनातन, आसुरि, पिंगल, सात षड्ज आदिस्वर, सात रस, सात ताल—ये सभी मेरे इस प्रभात को सुन्दर बनायें। गन्ध से युक्त पृथ्वी रस से युक्त जल, स्पर्श से समन्वित वायु, तेज से युक्त अग्नि, शब्द से परिपूर्ण आकाश—ये सब महान पंचतत्त्व मेरा सुप्रभात करें। सात समुद्र, सात, कुलाचल (पर्वत), सात ऋषि, सात द्वीप और सात लोक—ये सब मुझको सुन्दर प्रभात प्रदान करने की कृपा करें।"

यदि इस स्तोत्र पर विवेचना पूर्वक विचार किया जाय तो विश्व ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियाँ और पदार्थ इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। यदि हम भावनापूर्वक दूसरा उच्चारण करें और इसके अर्थ को हृदयंगम करते जायें, तो निश्चय ही हम समस्त विश्व—ब्रह्माण्ड, एकात्मता का भाव अनुभव कर सकते हैं। तब कोई हमारा विरोधी या अहितचिन्तक दृष्टि ही नहीं आयेगा। इस दृष्टि से इससे बढ़कर स्पष्ट

रूप से सर्व भौम प्रार्थना दूसरी नहीं मिल सकती। हम यह भी कह सकते हैं कि हिन्दू-धर्म के गायत्री महामन्त्र में जो प्रार्थना की जाती है यह उसी का विस्तृत और व्याख्या युक्त रूप है।

आगे चलकर सामान्य धर्मों का वर्णन करते हुए पुराणकार ने बहुत सी उपयोगी शिक्षायें दी हैं जो वर्तमान समय में भी ध्यान देने योग्य हैं। जैसे "वृथा अटन, वृथा दान, वृथा पशुघात और दाराओं का परि-ग्रह एक सद्गृहस्थ को वहीं करना चाहिए। वृथा अटन (आवारा गर्दी) से प्रत्यक्ष ही चरित्र की हानि होती है। वृथा दान से धन का नाश होता है और समाज मे दोष उत्पन्न होते हैं। वृथा पशुघाय पाप कार्य है जिसका कुपरिणाम परलोक में भोगना पड़ता है। वृथा स्त्रियों की संख्या बढ़ाने से सन्तान निकम्मी होती है और वर्ण संकरता बसने की भी सम्भावना रहती है।"

सब से बड़ा पाप-कृतघ्नता—

आज कल अन्ध विश्वासी लोग सबसे बड़ा पाप चौका चूला के नियमों में किसी प्रकार का परिवर्तन करने और पुराने रीति रिवाजों के त्याग को ही समझा करते हैं। किसी की निन्दा, चुगली, अकृतज्ञता आदि जैसी बातों में उनके ख्याल से कोई पाप नहीं। पर 'वामनपुराण' में कहा गया है—

"इस संसार में जो कृतघ्न होता है वही सबसे बड़ा महा पापी होता है। ब्रह्महत्या और गौहत्या जैसे महा पापों का तो कोई प्राय-श्चित्त होता है, पर जो अपने उपकारी के प्रति कृतघ्न होता है उसका कोई उपाय और प्रायश्चित्त नहीं होता। वे कृतघ्न ऐसे होते हैं जो अपने हितचिन्तकों और सुहृदों के अनन्त उपकारों को भी मेट देते हैं। उन पापियों की कोई निष्कृति है ही नहीं।"

इसी प्रकरण में प्रसंगवश यह वर्णन आया है कि संसार के विभिन्न क्षेत्रों में कौन-कौन वस्तुएं श्रेष्ठ हैं। ऐसा विचार-विमर्श ज्ञान-वृद्धि के लिए तो उपयोगी है ही, साथ ही इससे यह भी प्रतीत होता है कि

संसार में बिना गुणों के किसी का आदर नहीं होता । जिस प्रकार भगवान कृष्ण ने गीता के दसवें अध्याय में प्रत्येक सर्वश्रेष्ठ वस्तु को ईश्वरीय विभूति बतलाया है उसी प्रकार 'वामन पुराण' में कहा है—

"जिस प्रकार देवगण में भगवान् जनार्दन सर्वश्रेष्ठ है, पर्वतों में शीशराद्रि वरिष्ठ हैं, समस्त आयुधों में सुदर्शन चक्र सर्वोत्तम है, पक्षियों में गरुड़ महान है, सर्पों में अनन्त नाग श्रेष्ठतम है, प्राकृतिक भूतों में पृथ्वी सबसे प्रमुख मानी जाती है, नदियों में सर्व शिरोमणि गंगाजी है, जलजों में पद्म श्रेष्ठ होता है ! समस्त तीर्थ क्षेत्रों में जिस प्रकार कुरुक्षेत्र वरिष्ठ है, सरोवरों में मानसरोवर श्रेष्ठ है, पुष्प वनों मे नन्दन वन सर्वाधिक प्रसिद्ध है, धर्म नियमों में सत्य पालन सर्वोपरि होता है। सब प्रकार के यज्ञों में अश्वमेघ बड़ा है,तपस्वियों में कुम्भज ऋषि वरिष्ठ हैं। समस्त आगमों में वेद सबसे महान है, पुराणों में मत्स्य पुराण सर्वश्रेष्ट है, स्मृतियों में मनुस्मृति मुख्य है, तिथियों में दर्श अमावस्या और देवों में प्रमुख इन्द्र देव हैं, तेज के धारण करने वालों में सूर्य सर्वप्रधान होते हैं, नक्षत्रों में सबसे शिरोमणि चन्द्रमा होता है । धान्यों में शाली चावल, द्विपदों में विप्र चतुष्पदों में गौ और सिंह श्रेष्ठ होते हैं।

पुष्पों में जाती पुष्प, नगरों में काञ्चीपुरी, नारियों में रम्भा, तथा समस्त आश्रमों में गृहस्थ ही शिरोमणि होता है। पुरों में कुशस्थली, देशों में मध्य देश, फलों में आम, मूलों में कन्द तथा सब व्याधियों में अजीर्ण प्रमुख है। श्वेत पदार्थों में दुग्ध श्रेष्ठ है, पहिनने की वस्तुओं में कपास का वस्त्र, कलाओं में गणित, विज्ञानों में इन्द्र जाल, रसों में लवणरस, वृक्षों में बरगद श्रेष्ठ है। सती नारियों में पार्वती, गौओं में कपिला, वृक्षों में नील वृष और नदियों में वैतरणी प्रधान है। जिस प्रकार ये सब पदार्थ अपनी श्रेणी के अन्य पदार्थों पर वरिष्ठता रखते हैं उसी प्रकार पापियों में कृतघ्न ही सब से बड़ा पापी होता है।

निस्सन्देह कृतघ्नता का दोष बहुत बड़ा है और उससे विदित होता है कि ऐसे मनुष्य की मनः स्थिति अत्यन्त हीन है। जिससे हमारा छोटा या बड़ा कुछ भी उपकार किया है, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट

करना मानवीय धर्म है और उसमें हमारा कुछ खर्च भी नहीं होता। वरन् इससे उपकार करने वाले को एक प्रोत्साहन, एक प्रेरणा प्राप्त होती है, जिससे वह भविष्य में और अधिक परोपकार के कार्य करने को प्रस्तुत हो सकता है। पर कृतघ्न स्वभाव का व्यक्ति इतने गिरे हुए स्तर का होता है कि वह अपने साथ की गई भलाई के बदले में दो अच्छे शब्द कहना भी भारस्वरूप समझता है। इतना ही नहीं, ऐसे भी कृतघ्न देखे गये हैं जो अपने उपकारी पर दोषारोपण करने, उसकी निन्दा करने, उसका अहित करने में भी संकोच नहीं करते। इस प्रकार वे परोपकार और उदारता के उस स्रोत को सुखा डालना चाहते हैं जिससे अनेक कष्ट पीड़ितों का भला हो सकता है। इस दृष्टि से देखने पर कृतघ्नता वास्तव में बहुत बड़ा दोष प्रतीत होता है।

कहाँ तो हम देखते हैं कि विवेक रहित पशु भी अपने साथ भलाई, सद्व्यवहार करने वाले के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं, और समय पड़ने पर उसके लिए आत्मत्याग करने को प्रस्तुत रहते हैं और वहाँ मनुष्य जैसा ऊँच-नीच को खूब समझने वाला प्राणी उपकारी की प्रशंसा करने में भी कृपणता करे या उसका बदला उपकार के रूप में दे, तो उसे किस श्रेणी में रखा जाय ? निश्चय ही उसे अधमाधम कहा जायगा और वह न्यायकर्त्ता प्रभु की दृष्टि में घोर दण्ड का भागी होगा।

आत्मज्ञान की सर्व श्रेष्ठता—

पुराणों में सब तरह का ज्ञान और विवेचन मिलता है। एक तरफ उनमें बिल्कुल साधारण तीर्थों का दर्शन मज्जन करने अथवा एकादशी, प्रदोष आदि का व्रत कर लेने से ही स्वर्ग—अपवर्ग की प्राप्ति का लाभ बतलाया गया है तो दूसरी तरफ ऐसे भी वर्णन मिलते हैं जिनमें तीर्थादि को बहुत निम्न कोटि का पुण्य बतलाया गया है, और आत्म-ज्ञान को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया है। शास्त्रों में एक श्लोक आता है। कि "स्नान और दर्शन करने योग्य तीर्थ बालबुद्धि वाले (अल्प-ज्ञान युक्त) व्यक्तियों के लिए ईश्वर स्वरूप है। विद्वानों की दृष्टि में

संसार का संचालन करने वाली दिव्य शक्तियाँ ही ईश्वर का वास्तविक रूप होती हैं। और आत्म ज्ञानियों की दृष्टि में उनका आत्मा ही परमात्मा स्वरूप होता है।

"वामन पुराण" में भी अन्य पुराणों की तरह तीर्थों और देव प्रतिमाओं, शिव लिंगों, पवित्र सरोवरों आदि का माहात्म्य भरा हुआ है और उनके द्वारा बहुत भारी पुण्य की प्राप्ति का आश्वासन दिया गया है, पर धर्म के स्वरूप का विवेचन करते हुए यह भी कह दिया है—

किंतेषां सकलैस्तीर्थैराश्रमैर्वा प्रयोजनम्।
येषां चानन्तक चित्तमात्मन्येव व्यवस्थितम्॥

(वा० पुरा० पृ० ४०४)

"जिसका अनन्तक चित्त आत्मा में ही व्यवस्थित हो गया है उसको समस्त तीर्थों अथवा आश्रमों की क्या आवश्यकता है?"

इसकी व्याख्या करते हुए पुराणकार कहते हैं कि "यह आत्मा एक नदी तुल्य है, जो संयम स्वरूप पुण्य-तीर्थों वाली है। सत्य ही उसमें जल-स्वरूप है और शील तथा शम आदि से वह समन्वित है। उस नदी में स्नान करने वाला महान् पुण्यात्मा होता है तथा पवित्र हो जाता है। जल से यह अन्तरात्मा कभी शुद्ध नहीं होता। मनुष्य का यही परम धर्म है कि वह आत्मा के सम्बोध स्वरूप वाले सुख में प्रविष्ट हो जाये। सन्त पुरुष आत्मतत्व को ही जानने योग्य कहा करते हैं। उनको प्राप्त करके यह देहधारी समस्त कामनाओं का त्याग कर दिया करता है ब्राह्मण वही है कि जिसके पास समता-सत्य रूपी धन हो। इसके सिवा अन्य धन की उसे आवश्यकता नहीं। शील का पालन और सरल व्यवहार और शनैः शनैः सांसारिक व्यवहारों से उपराम हो जाना ब्राह्मण का कर्तव्य है।" (वा० पु० पृ० ४०५)

आज कल के जो पंडा-पुजारी केवल तीर्थ-स्नान और वहाँ पर पण्डों को दान देने को ही स्वर्ग का एक मात्र द्वार बतलाया करते हैं, उनके लिये उपर्युक्त श्लोक ध्यान देने योग्य हैं। हिन्दू-धर्म और विशेषतः पुराणों को इन्हीं लोगों ने बदनाम किया है। उनमें हर जगह

यह कहा गया है कि दान हमेशा पूर्ण सदाचारी और त्यागी-तपस्वी ब्राह्मण को देना चाहिए। पर इन तीर्थ पुरोहितों का आचार कैसा होता है और त्याग और तपस्या की दृष्टि से उनके कर्म किस प्रकार के होते हैं, इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। आज कोई भी समझदार व्यक्ति उनका पक्ष-समर्थन करने को तैयार नहीं। सभी जानते हैं कि वे किस प्रकार गो० तुलसीदास जी की 'बेचहिं वेद धर्म दुहि लेंही", वाली उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं। 'वामन पुराण' का कहना है कि सच्चा ब्राह्मण सांसारिक धन की लालसा नहीं रखता, वरन् उसका लक्ष्य प्राणी मात्र को सम दृष्टि से देखना और सत्य व्यवहार करना होता है। प्राचीन काल में ब्राह्मणों को जगत पूज्य कहा गया था और उनका दर्जा देवताओं से भी बढ़कर माना गया था, उसका कारण यही था कि वे पूर्ण त्यागी और अपना ध्यान विशेष रूप से संसार के कल्याण की तरफ ही रखते थे। श्रेष्ठ ब्राह्मण दान लेने को बड़ी हीनता की बात समझते थे और जब राजाओं के आग्रह से उनको लेना भी पड़ता था तो उनको ज्ञान प्रचार और विद्या दान जैसे समाजोपयोगी कार्यों में ही लगाते थे। इसके मुकाबले में आज कल वे हर तरह का छल-बल करके और कभी तो इससे भी अधिक नीचता पर उतर कर अधिक से अधिक दक्षिणा प्राप्त करने में लगे रहते हैं। समाज और धर्म के सच्चे प्रेमी ब्राह्मणों को इस परिस्थिति को बदलने का प्रयत्न करना चाहिए।

दूषित कर्मों से बचने की प्रेरणा—

पुराणों का एक अंग नरक-वर्णन भी है। अन्य धर्म वालों में भी पापियों को दण्ड देने के लिए नरक का वर्णन किया गया है। जैसे ईसाईयों में 'हैल' और मुसलमानों में 'दोजख' की चर्चा मिलती है। पर जहाँ तक हम जानते हैं उन धर्मों में सिवाय इनका नाम आने के, कोई विशेष वर्णन नहीं किया गया है। पर हिन्दू पुराणों में २१ नरकों का जैसा विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है और उनमें पापियों को

दिये जाने वाले दण्डों का जैसा प्रभावशाली चित्र खींचा है, उसका मुकावला कहीं नहीं मिल सकता। यह वर्णन सभी पुराणों में मिलता-जुलता ही है, तो भी लेखन शैली की भिन्नता के कारण उसके प्रभाव में अन्तर पड़ता रहता है। 'वामन पुराण' में जिन दुष्कर्मों के फलस्वरूप नरक भोगने का वर्णन किया है, उनकी अधिकता आज कल के जनसमुदाय में बहुत देखने में आती है। इस दृष्टि से उसका कुछ अंश यहाँ देना अनुचित न होगा—

"जो लोग गुरुजनों (माननीय पुरुषों) की निन्दा किया करते हैं, जो शुभकार्यों में विघ्न-बाधा डाला करते हैं, जो अपने मित्रों, सहकारियों के साथ अनुचित भेदभाव का व्यवहार करते हैं वे नरकगामी होते हैं। जो अधम लालच के कारण एक पुरुष को कन्या देकर फिर उसे दूसरे को देता है, उनको यमदूत टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। जो मनुष्य कुवाक्यों से सज्जन पुरुषों को पीड़ा पहुँचाते हैं उनको नरक के पक्षी अपनी तीव्र चौंच से छेदा करते हैं। जो लोग स्वार्थवश सत्पुरुषों की चुगली खाते हैं, बुराई किया करते हैं, उनकी जिह्वा को कौए खींचा करते हैं। जो नालायक लोग अपने पालन कर्त्ता के साथ नीचता का व्यवहार करते हैं वे मलमूत्र से भरे नर्क में डाले जाते हैं। एक ही पंक्ति में बैठे लोगों को आसमान भोजन के पदार्थ देता है, वे नरकों में कष्ट सहन करते हैं। जो माता, ज्येष्ठ भाई, पिता, बहिन तथा अन्य पूज्य व्यक्तियों के साथ मारपीट करते हैं उनको लोहे की गर्म जंजीरों से बाँध कर रौरव नरक में डाल दिया जाता है। जो माँस आदि वृथा ही खाते हैं उनके मुँह में गर्म लोहा डाल दिया जाता है।

"जो लोग सार्वजनिक उपयोग के कुआ, बावड़ी, तालाब, आदि जलाशयों और सभाग्रह आदि को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, उनकी देह का चमड़ा उतार कर नरक में डाला जाता है जिससे वे निरन्तर विलाप करते रहते हैं। जो लोग सार्वजनिक उपयोग के स्थानों को व पदार्थों को शौच आदि से गन्दा करते हैं उनकी आँतों को कौए खींच ले जाते

है। जो मनुष्य अपने आश्रितों और निकट वर्तियों का ध्यान छोड़कर अपने ही शरीर का पोषण करने में संलग्न रहता है उसे 'श्वयोनि' (कुत्ते की योनि) नामक नरक में डाला जाता है। जो लोग दूसरे की धरोहर को मार बैठते हैं उनको 'वृश्चिकासन' (बिच्छुओं के) नरक में रखा जाता है। जो लोग सार्वजनिक जलाशयों में विष्ठा, कफ, मूत्र आदि डालते हैं, वे इन्हीं घृणित पदार्थों से भरे नरक में कष्ट पाते हैं। जो पापी कन्या को भ्रष्ट करते हैं उसके गर्भ का स्राव करते हैं, उनको नरक में कीड़ों और चींटियों से भक्षण कराया जाता है। जो व्यक्ति कूट-सत्य (झूँठ को सच बना कर) बोलते हैं, न्यायालय में झूँठी गवाही देते हैं, वे महारौरव नरक में दश हजार वर्ष तक पड़े रहते हैं।"

नरकों का वर्णन विशेष रूप से उन व्यक्तियों को चेतावनी स्वरूप है जो अपने स्वार्थ के लिए समाज तथा अन्य व्यक्तियों का अभीष्ट किया करते हैं। अथवा जो स्वभाव से ही दुष्ट हैं और दूसरों का अहित करने में ही जिनको अच्छा लगता है। ये नरक कहाँ हैं, इसी पृथ्वी पर हैं या किसी अन्य लोक में हैं, वे वास्तविक हैं अथवा उनका वर्णन आलंकारिक रूप में किया गया है, इस पर बहस करना निरर्थक है। यह कार्य निठल्ले लोगों को ही पसन्द आ सकता है। हम तो यही कहना चाहते हैं कि पाप कर्म, बुरा व्यवहार, दुराचार करने वालों को उसका प्रतिफल, दण्ड अवश्य किसी न किसी रूप में मिलेगा। नरकों के जो कष्ट ऊपर वर्णन किये गये हैं, उनको भोगते हुए अनेक व्यक्ति इस संसार में ही दिखाई पड़ते है। अतएव नरकों के वर्णन से हमको यह शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिए कि हम बुरे कर्मों से बचते रहें और यह विश्वास रखें कि हम जैसे भले या बुरे कर्म करेंगे, उनका वैसा ही फल हमको अवश्य भोगना पड़ेगा, यही प्रकृति का नियम है। 'कर्मफल' का सिद्धान्त अटल और अचल है, यह बात दूसरी है कि मन्द बुद्धि लोग उसे न समझ सकें। चोर, डाकू, बदमाश खोटे कर्म करते हुए उद्दण्ड पूर्वक

कहते रहते हैं कि इनका कोई कुछ नहीं कर सकता, पर हम निश्चय जानते हैं कि उनका नतीजा कभी अच्छा नहीं हो सकता। इसी प्रकार जो लोग छल, कपट, भ्रष्टाचार, मिलावट, रिश्वत आदि के द्वारा धनी बनने की कोशिश करते हैं, उनका अन्तिम परिणाम भी बुरा ही होता है। चाहे आजकल घोर कलियुग का अन्तिम दौरा होने से लोगों की बुद्धि नष्ट हो गई हो और वे बुरे कर्मों को करके भी वेशर्मी से डींगें मारते रहें पर उनको 'कर्म फल' अवश्य भोगना पड़ेगा उसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं।

साम्प्रदायिक सद्भावना–

जैसे हम आरम्भ में कह चुके हैं, साम्प्रदायिक सद्भावना इस पुराण की बहुत बड़ी विशेषता है। इसे 'शैव पुराण' कहा गया है और इसमें शिवजी तथा देवी के सम्बन्ध की कथायें भी बहुत अधिक पाई जाती हैं जब कि कृष्ण और राम की चर्चा भी नहीं की गई। तो भी इसमें शिवजी के साथ ही विष्णु की भी पूर्ण रूप से प्रशंसा की गई है, जिसके लिए पुराणकार की सम बुद्धि की प्रशंसा करनी पड़ती है। जब शिवजी के पुत्र स्वामि कार्तिक को देव सैन्य के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया तो उनकी माता पार्वती जी ने कहा कि अब तुम विष्णु भगवान् के चरण स्पर्श करके उनका आशीर्वाद ग्रहण करो। स्कन्द तो यही जानते थे कि संसार में सबसे बड़े देव तो महादेव ही हैं तब हमको किसी अन्य के पैर छूने की क्या आवश्यकता है? उन्होंने कहा कि ये 'विष्णु जी' कौन हैं जिनका आदर करना मेरे जैसे उच्च पदवी-धारी के लिए भी आवश्यक है। तब उनकी माता ने बतलाया—

केवलं त्वहि मां देव तत्पिता प्राह शंकरः।
नान्य परतरोऽस्माद्धि वयमन्ये च देहिनः॥
(५८। १०)

अर्थात्–"मैं तो इस सम्बन्ध में अधिक नहीं जानती, पर तुम्हारे पिता (शिवजी) कहते थे कि विष्णु ही परात्पर देव हैं जबकि हम सब देहधारी

हैं।" वैसे शास्त्रों में ब्रह्मा-विष्णु-महेश को एक ही शक्ति के तीन रूप बतलाया है, तो भी शिवजी ने विष्णु के सृष्टि पालक होने के नाते बड़ा पद दिया यह उनकी महानता ही मानी जायगी।

इसी प्रकार जब चण्ड-मुण्ड दानव देवी के साथ युद्ध करने को आये तो देवगण ने उनसे कवच पहिन लेने को कहा। पर देवी ने कहा कि ऐसे आक्रमणकारियों को मैं कुछ नहीं समझती और उनका सामना करने के लिए कवच पहिनने की कोई आवश्यकता नहीं। यह सुन कर शिवजी ने उनकी रक्षार्थ 'विष्णु पंजर' का उच्चारण किया। उसकी महिमा को बतलाते हुए कहा गया है—

एवं प्रभावो द्विज विष्णुपंजरः सर्वासु रक्षास्वधिके हिगीतः।
कस्तस्य कुर्याद् भुवि दर्पहानिं यस्य स्थितचेतसिचक्रपाणिः॥
(१६-४३)

अर्थात् विष्णु पंजर का ऐसा ही अमित प्रभाव है और रक्षा करने वाले प्रयोगों में उसकी अत्यन्त प्रशंसा की गई है। जिसके हृदय में भगवान् चक्रपाणि स्थित हों उसको नीचा कौन दिखा सकता है?

जब भगवान् शंकर को ब्रह्मा का पाँचवा मुख छेदन करने से ब्रह्म-हत्या लगी और उसका कपाल शंकरजी के हाथ में चिपका रह गया तो वे उससे छुटकारा पाने को विष्णु भगवान् की ही शरण में गये और उनकी इस प्रकार स्तुति की—

हे समस्त देवों के स्वामिन्! आपको मेरा नमस्कार। हे गरुड़-ध्वज! आपको मेरा प्रणाम है। हे शंख-चक्र-गदा को धारण करने वाले वासुदेव! आपको मैं विनीत भाव से नमस्कार करता हूँ। आप निर्गुण अनन्त हैं, आपके स्वरूप का ज्ञान तर्क द्वारा नहीं हो सकता। आप विद्या और अविद्या से परे समस्त विश्व के अवलम्ब स्वरूप हैं। हे रजोगुण से युक्त ब्रह्ममूर्ते! आप ही सनातन देव हैं, आपको मेरा नमस्कार है। हे नाथ! यह समस्त चराचर जगत् आपके द्वारा ही रचा गया है। हे सतोगुण पर स्थित विष्णुमूर्ते! आप समस्त लोकों के स्वामी

हैं। हे महाबाहो! आपही सम्पूर्ण विश्व का भरण-पोषण करने वाले हैं। हे तपोमूर्ते! आपही रुद्र के रूप में क्रोध से समुत्पन्न होने वाले हैं। इसीलिए मैं गुणों से बँधा हुआ हूँ, जब कि आप सर्व व्यापी हैं अतः आपको मेरा नमस्कार है। हे जगन्नाथ! यह भूमि आपकी ही है! जल, आकाश, अग्नि, वायु, बुद्धि, मन, शर्वरी सभी आपके ही रूप हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ! धर्म-यज्ञ-तप-सत्य-अहिंसा-शौच-क्षमा-दान-दया लक्ष्मी और ब्रह्मचर्य के आधार आप ही हैं। आपका ही स्वरूप चारों वेद हैं। आप ही छः वेदांग, उपवेद और उन सब के ज्ञाता हैं। हे अच्युत! हे चक्रपाणि! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है। हे वामन और मत्स्य स्वरूप धारण करने वाले! आपको ही मैं परम करुणासागर समझता हूँ आप इस ब्रह्महत्या से मेरी रक्षा कीजिये। मेरे शरीर में स्थित जो यह अशुभ है, उसको आप नष्ट कर दीजिये। उसके कारण मैं दग्ध हो रहा हूँ। हे नाथ! आप मुझे पवित्र कर दीजिये आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है।"

जब हम इस वर्णन की तुलना शिव पुराण के वर्णनों से करते हैं तो दोनों में पृथ्वी-आकाश का सा अन्तर दिखाई पड़ता है। उसमें सती ने ही जब दक्ष-यज्ञ में शिव का भाग न होते हुए भी विष्णु और ब्रह्मा को उपस्थित देखा तो उसने उनकी घोर भर्त्सना करते हुए कहा—

"हे विष्णो! क्या आप शिवजी के तत्व को नहीं जानते? श्रुतियाँ उनको गुण रहित बताती हैं! हे मतिहीन! यद्यपि प्राचीन समय में भी शाल्व आदि की घटना में तुमको अच्छी तरह समझा दिया गया था फिर भी तुमको ज्ञान नहीं हुआ और अपने स्वामी का भाग न देख कर भी तुमने अपना भाग स्वीकार कर लिया। हे ब्रह्मा! तुम पहिले अहंकार वश शिवजी से द्रोह करते थे जिससे तुम्हारे पाँचवे मुख को उन्होंने छिन्न कर डाला। क्या तुम उस बात को भूल गये।"

फिर जब शिवजी का प्रधान गण वीरभद्र दक्ष-यज्ञ को नष्ट करने से नर सहित यज्ञभूमि में पहुँचा तो उसने भी विष्णु को इससे बुरी तरह

डाँटा फटकारा और कहा कि—"हे विष्णु ! तुमने किस अभिमान के वशीभूत होकर दधीचि के द्वारा दिलाई गई शंकर की शपथ का उल्लंघन किया ? क्या शिवजी की शपथ तोड़ने में तुम समर्थ हो ? तुम कौन हो? तीनों लोकों में तुम्हारी रक्षा करने वाला कोई है ? सती ने जो कुछ किया, क्या तुमने उसे नहीं देखा ? क्या दधीचि के वाक्यों को तुमने नहीं सुना ? क्या तुम भी दक्ष के यज्ञ में कुत्सित दान ग्रहण करने आये हो ? लो, मैं तुम्हें कुत्सित दान देता हूँ। हे विष्णो ! मैं तुम्हारे हृदय को त्रिशूल से विदीर्ण कर डालूँगा, मैं तुम्हें पृथ्वी में डाल कर गला दूँगा तथा भस्म कर दूँगा।" अन्त में वीरभद्र ने विष्णु जी से कहा—

रे रे हरे दुराचारी महेश विमुखाधम।
श्रीमहारुद्रमाहत्म्यं किन्न जानासि पावनम् ॥

"अरे दुराचारी विष्णो ! हे शिव विमुख अधम ! क्या तुम शिवजी के पवित्र माहात्म्य से अनभिज्ञ हो ?" इस प्रकार शिव पुराण में विष्णु की खूब छीछालेदर की गई है और उनके मुख से ही अपनी हीनता स्वीकार कराई गई है। जब दक्ष ने बार-बार उनके चरणों पर गिर कर यज्ञ की रक्षा करने की प्रार्थना की तो उन्होंने कहा—

'हे दुर्बुद्धि वाले दक्ष ! तुम कर्म-अकर्म को नहीं देखते हो। यह वीरभद्र रुद्रगणों का अधीश्वर है और हमारे विनाशार्थ ही यहाँ आया है। भ्रम वश में शिवजी की शपथ का उल्लंघन करके यहाँ ठहरा रहा उसका परिणाम अब प्रत्यक्ष ही मिल रहा है। हे दक्ष ! इस उत्पात को शान्त करना मेरी सामर्थ्य से बाहर हैं। शपथ का उल्लंघन करने से मैं भी शिवद्रोही हो गया। तुम्हारे ही दुष्कर्म के कारण मुझे भी यह दुःख मिला है, क्योंकि शिवद्रोही को सुख की प्राप्ति त्रिकाल में भी नहीं होती। इस कुसमय में यह कैसा प्रलयकाल उपस्थित हुआ और हमारा तुम्हारा अन्तकाल आ पहुँचा। हम स्वर्ग पृथिवी या पाताल कहीं भी चले जायें, वीरभद्र के शस्त्र सभी स्थानों में पहुँच सकते हैं ! शिवजी की आज्ञा से ही काल भैरव ने अपने नखों से ब्रह्माजी का पाँचवा शीश काट डाला था, तब भी हम उसका कुछ न कर सके।"

इसी प्रकार शैव और वैष्णव पुराणों में एक दूसरे पर तरह-तरह के आक्षेप किये गये हैं, जिससे दोनों सम्प्रदाय वालों में प्राचीन काल में खूब तनातनी और संघर्ष हुए हैं। अब वह जमाना बीत चुका है, तो भी दोनों सम्प्रदायों के लाखों अनुयायी एक दूसरे को विरोधी समझते हैं और सहयोग पूर्वक कोई धार्मिक या सामाजिक कार्य करने को तैयार नहीं होते। घृणा का बीज बोने वाले साहित्य का निस्सन्देह बड़ा कुप्रभाव होता है, जिससे समाज और राष्ट्र को सैकड़ों वर्ष तक हानि उठानी पड़ती है। इस दृष्टि से 'वामन पुराण' की समन्वयकारी नीति को हम प्रशंसनीय ही कह सकते हैं। उसमें जहाँ विष्णु की स्तुति की गई है वहाँ शिवजी की स्तुति भी अनेक स्थानों पर पाई जाती है। दारु वन की घटना में ही शिवलिंग का सम्वरण करने के लिए ब्रह्मा समस्त ऋषियों के साथ भगवान् शंकर की शरण में पहुँचे और उनसे अपने अपराधों की क्षमा माँगते हुए कहा।

"जिसका कभी अन्त नहीं है, ऐसे वरदान प्राप्त करने वाले पिनाकधारी स्थाणु देव, परमात्मा महादेव की सेवा में हम सादर प्रणाम करते हैं। हे तारक! भुवनों के स्वामी, ज्ञानों के भण्डार! आपके लिए सर्वदा हमारा नमस्कार है। आप ही पुरुषोत्तम और सबसे महान देव हैं। हृदय के पद्म में शयन करने वाले आपके लिए नमस्कार है। घोर पापियों के लिए प्रचण्ड क्रोध वाले आपके लिए नमस्कार है। हे शूरों के नायक! आपके हाथ में शूल रहता है और आप समस्त विश्व पर कृपा-भाव भी रखते हैं, आपको हमारा नमस्कार है।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान में कहा गया है—"मैं शूलपाणि देव के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानता। भगवन्! आप ही जगत् के गुरु हैं। ये समस्त ब्रह्मादिक सुर आपके आश्रय से ही स्थित हैं। समस्त देवों में महान् कार्य करने और कराने वाले सब कुछ आप ही हैं। ये समस्त देवगुण आपके प्रसाद से ही आनन्द प्राप्त करते हैं।"

वेदों और शास्त्रों में स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया है कि इस समस्त जगत् में एक ही दैवी सत्ता व्याप्त है और उसी को लोग

अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार पृथक्-पृथक् नामों से पुकारते हैं। भगवान् के नामों में देश और भाषा भेद के कारण अन्तर होना स्वाभाविक है, पर नाम-भेद के कारण आपस में लड़ाई झगड़ा करना अथवा एक दूसरे के 'भगवान्' को गालियाँ देना बुद्धिमत्ता का नहीं वरन् मूर्खता का ही चिह्न है। इसलिए हिन्दू-धर्म के विविध सम्प्रदायों के अनुयाईयों को भविष्य के लिए अपनी गलती का सुधार करना चाहिए।

एक कथा के अनेक रूप—

हमने अन्य पुराणों की भूमिकाओं में भी अनेक बार यह समझाने का प्रयत्न किया है पौराणिक कथाओं की यथातथ्यता के सम्बन्ध में बहस करनी अथवा उनको पूरी तरह से सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना अनावश्यक है। पुराणकारों ने भी स्वयं भी उनको 'उपाख्यान' कहा है जिसका अर्थ 'कहानी-किस्सा' ही होता है। उन्होंने प्राचीन किम्बदन्तियों के आधार पर सामान्य जनता को शिक्षा देने के लिए इन 'धर्म-कथाओं' की रचना की है। पर जो लोग अनपढ़ हैं अथवा जिनमें साहित्यिक ज्ञान का सर्वथा अभाव है, वे जब इनको सुनते हैं तो यही ख्याल करते हैं कि इनका एक-एक अक्षर ज्यों का त्यों बिल्कुल सही है और ऐसी सनस्त घटनाएँ वास्तव में हुई हैं।

ऐसे लोगों को हम फिर यह समझाना चाहते हैं कि यदि उनका विचार ठीक होता तो पुराणों में एक ही कथा को कई-कई प्रकार से वर्णन नहीं किया जाता। यदि हम कई पृथक्-पृथक् पुराणों में पाये जाने वाले अन्तर का ख्याल न भी करें तो एक ही पुराण में एक घटना के सम्बन्ध में दो प्रकार की कथाएँ पाई जाती हैं?' इसी वामन पुराण में दारुवन में शिवजी के नग्न होकर घूमने और ऋषियों कोशाप देने का वर्णन दो स्थानों में दो प्रकार से किया गया। उनमें से एक कथा तो छठे अध्याय से आई है जिसका सारांश हम आरम्भ में दे चुके हैं। दूसरी कथा ४३ वें अध्याय में आई है। इसमें कहा गया है—

'एक बार जगदम्बा उमा के साथ भगवान् शंकर आकाश मार्ग से

जा रहे थे। उस समय देवी ने अनेक ऋषियों को घोर तप में लीन देखा। वे इससे बड़ी दुःखित हुई और देवेश्वर शंकर से कहने लगीं कि ये दारुवन में रहने वाले ऋषिगण आपका अनुग्रह प्राप्त करने के लिए बहुत क्लेश सहन कर रहे हैं, अब उनके ऊपर दया कीजिये। ये बिचारे शुष्कस्नायु और अस्थियों वाले अभी तक सिद्धि प्राप्त नहीं कर सके हैं। भगवान् ने हँसकर कहा—"हे देवि ! आप सात्विक रूप से धर्म की अत्यन्त गहन (गूढ़) गति को नहीं जानती। ये सब लोग धर्म को नहीं जानते और न ये काम का त्याग कर सके हैं। ये लोग क्रोध से भी मुक्त नहीं हो सके हैं। ये केवल गूढ़ बुद्धि वाले हैं।

यह सुनकर पार्वतीजी को बड़ा कौतूहल हुआ और कहने लगीं कि आप जो कहते हैं उसे प्रत्यक्ष करके दिखलायें। इस पर शंकर पार्वतीको आकाश में ही छोड़कर मुनियों के पास पहुँचे। उस समय वे युवावस्था वाले, अत्यन्त सुन्दर, नग्न और फूलों से सजे हुए थे। वे कपाल हाथ में लेकर भिक्षा माँगते हुए मुनियों के आश्रम में चले गये। उन ब्रह्मवादी मुनियों की स्त्रियाँ उन कौतुक प्रिय शंकरजी पर मोहित हो गई और आपस में कहने लगीं 'आओ ! इस भिक्षुक का दर्शन करें।' वे सब बहुत से कन्द, मूल, फल लेकर उनके समीप पहुँची। शंकरजी ने बड़ी प्रसन्नता से उनकी भिक्षा ली और कहा—आपका कल्याण हो, ये तपस्वी आपके आश्रय से ही स्थित हैं। वे स्त्रियाँ कहने लगीं--आप तो परम सुन्दर तपस्वी हैं। आप किस व्रत का पालन करते हुए नग्न विचरण कर रहे हैं? शंकरजी ने हँसते हुए कहा कि "मेरे व्रत का रहस्य प्रकट नहीं किया जा सकता। पर जो इसे अपने आप समझ जाते हैं वे अपना परम सौभाग्य मानते हैं।" उन स्त्रियों ने कहा कि हम भी ऐसा ही करेंगी। ऐसा कह कर वे कामवश होकर शंकरजी से लिपट गईं। यह देखकर वे ऋषिगण बड़े क्रोध में भर गये और लकड़ी-पत्थर उठा कर शंकरजी के लिंग पर मारने लगे। इस प्रकार उनके प्रहार से शिवजी का लिंग वहीं गिर गया और वे स्वयं अन्तर्ध्यान हो गये।"

इसके पश्चात् सब ऋषि बहुत डर कर ब्रह्माजी के पास गये।

उन्होंने भी उनको क्रोध करने और कामनाओं में ग्रस्त रहने के लिए फटकारा। तब सब मिलकर शिवजी की शरण में गये, तो उन्होंने कहा कि उस लिंग की सदैव पूजा करते रहने से ही तुम्हारा उद्धार हो सकेगा। तब से लिंग पूजा बराबर प्रचलित है।

यही कथा 'स्कन्द पुराण' में भी दी गई हैं। पर उसमें न तो कामदेव से डर कर भागने की बात कही गई है और न उमादेवी को कौतुक दिखाने का वर्णन है। उसमें कहा गया है कि शिवजी भिक्षा माँगते हुए स्वाभाविक रूप से ही दारुवन में पहुँच गये थे और वहाँ ऋषि पत्नियाँ अकस्मात् उनके पीछे चल पड़ी। एक अन्य पुराण में कहा गया है कि एक बार जब ब्रह्मा और विष्णु में इस बात पर झगड़ा हुआ कि उन दोनों में से कौन बड़ा है, तो उनके सामने दिव्य शिवलिंग उत्पन्न हो गया और उन दोनों में यह शर्त ठहरी कि जो कोई इस लिंग के अंतिम छोर का पता लगा लावे वही बड़ा माना जाय। विष्णु नीचे की तरफ गये और ब्रह्मा ऊपर की ओर। वापस लौटने पर ब्रह्मा ने केतकी के पेड़ से झूँठी गवाही दिलवादी कि उनने लिंग का अन्तिम छोर देख लिया। इसी अपराध में उनका पंचम सिर काट डाला गया और विष्णु को वरिष्ठ पद मिल गया।

जब पाठक पुराणों में एक कथा का कई तरह का वर्णन पढ़ेंगे तो वे किसको सच समझ सकेंगे? इनमें पहली कथा उस समय की बतलाई गई है जबकि सती ने दक्ष यज्ञ में देहत्याग किया और दूसरी उस समय की है जब हजारों वर्ष बाद सती ने हिमाचल के घर में जन्म ले लिया और कई हजार वर्ष तपस्या करके शिवजी के साथ विवाह किया। पहली कथा में शिवजी सती के वियोग में विक्षिप्त की तरह—बिना कुछ सोचे समझे इधर-उधर घूम रहे थे और दूसरी में वे अपनी प्रिया को जगत् का कौतुक दिखाने के लिए नाटक का सा खेल कर रहे थे। हम तो कहते हैं कि इनमें से किसी भी कथा में वास्तविकता का प्रश्न उठाना बेकार है। ये दो भिन्न कथाएँ कथावाचकों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल रच डाली हैं और किसी कारण वश दोनों एक ही पुराण में

सम्मिलित हो गई है। लेखकों का एक मात्र उद्देश्य अपने विचारानुसार सर्वसाधारण को धार्मिक शिक्षा देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

इस प्रकार के परस्पर विरोधी वर्णन अन्य पुराणों में भी पाये जाते हैं। विभिन्न पुराणों में प्रत्येक कथा को इस ढंग से लिखा है कि दूसरे से उसका मेल ही नहीं बैठता। पुराणों की क्या बात 'बाल्मीकि रामायण' और तुलसी रामायण के कथानकों में ही जगह-जगह बहुत अन्तर पाया जाता है।

पुराणों का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से लिखे जाने का कारण सहज में समझ में आ जाता है। वर्तमान पुराण वास्तव में एक समय में एक व्यक्ति द्वारा नहीं लिखे गये हैं, वरन् उनमें कथा वाचक व्यास लोगों द्वारा समय-समय पर नये-नये उपाख्यान का समावेश किया गया है जो सैकड़ों वर्षों में सैकड़ों ही "व्यासों" द्वारा देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार लिखे जाते रहे हैं। ये सब धार्मिक गाथायें हैं, जिनका मूल आधार प्राय: प्राचीन जनश्रुतियों अथवा वैदिक साहित्य के गूढ़ वर्णनों से प्राप्त हुआ था। धार्मिक शिक्षाओं के साथ ही अनेकों लेखकों ने उनमें ज्ञान,विज्ञान, व्यवहारिक जानकारी, उद्योग-धन्धे सम्बन्धी विषयों का भी समावेश कर दिया है, जिनका कुछ अंश अभी तक उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं।

बलि-वामन चरित्र–

जिस घटना पर इस पुराण का नामकरण किया गया है वह बलि और वामन चरित्र इसमें अपेक्षाकृत अल्प परिणाम मे ही वर्णन किया गया है। ऋग्वेद तथा अन्य वेदों में भी कई जगह यह कहा गया है कि "यह समस्त जगत् विष्णु के तीन चरणों के अन्तर्गत है।" इसी की व्याख्या करते हुए ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ संक्षिप्त कथानक जोड़ दिया है। उसके बाद पुराणकारों ने अपने काव्य और साहित्यिक ज्ञान द्वारा उसे एक प्रभावशाली उपाख्यान का रूप दे दिया। इस पुराण में राजा

बलि का जो वैभव वर्णन किया गया है, उसकी दानशीलता की प्रशंसा की गई है, भगवान् वामन का महान प्रभाव दिखलाया गया है, वह सब एक पाठक को एक सुन्दर काव्य की तरह ही ज्ञात होता है। बलि के कथानक की एक विशेषता यह है कि दानव होते हुए भी परम धर्मात्मा संयमी और दानी चित्रित किया गया है। कहा गया है कि जब वह देवताओं पर विजय प्राप्त करके स्वर्ग के अधिपति के रूप में सिंहासनासीन हुआ तो उसके धर्म-राज्य में पाप-कर्म पूर्णतः नष्ट हो गये और सतयुग जान षड़ने लगा। तब कलियुग वहाँ से भागकर ब्रह्माजी के पास पहुँचा और कहने लगा—

"हे देवश्रेष्ठ ! मेरा जो स्वाभाविक धर्म है उसे महाराज बलि ने नष्ट कर दिया है अर्थात् मेरे समय में जो कुछ होना चाहिए था उससे आज सब कुछ विपरीत हो रहा है।" ब्रह्माजी ने कहा—"हे कलियुग ! बलि ने केवल तेरा ही स्वभाव अपहरण नहीं किया है वरन् समस्त जगत् के स्वभाव को अपहृत कर लिया है। यह देखो इन्द्र, वरुण, मरुत् आदि यहाँ बैठे हैं, इनका भी सब कुछ अपहृत हो गया है बलि के प्रभाव से यह विचारा भास्कर भी इस समय हीनता को प्राप्त हो रहा है।"

बलि के धार्मिकता, न्याय और सत्यपरायणता तथा शौर्य-वीर्य को देखकर त्रैलोक्य की लक्ष्मी भी उसके पास आ गई और कहने लगी कि "मैं इन्द्र की राज्य लक्ष्मी थी। इस समय तुम्हीं सभी से अधिक शौर्य और वीर्यशाली हो,अतएव मैं तुम्हारे पास आ गई हूँ। हे दानवों में श्रेष्ठ! आपने अपने सत्कर्मों से अपने पितामह प्रह्लाद को जीत लिया है। ऐसा कह कर वह चन्द्रमा की सी द्युति वाली जय श्री राजा बलि में प्रविष्ट हो गई। उसके पश्चात् ह्री, मति, द्युति, प्रभा, गति, क्षमा, भूति,विद्या, नीति, दया, मति, क्षुति, स्मृति, धृति, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि सभी बलि के के ही आश्रित हो गईं।"

राजा बलि की दानशीलता भी अपार वर्णन की गई है। जब भगवान् वामन उससे दान माँगने को चले तो समस्त जगत् चलायमान

हो गया और दानवों का तेज अपहृत होता जान पड़ा। इन पर बलि ने दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य से इसका कारण पूछा। उन्होंने समाधि योग द्वारा सारा रहस्य जानकर कहा कि—"भगवान् वामन दान माँगने को तेरे यज्ञ में आ रहे हैं। वे तेरा सर्वस्व लेकर इन्द्र को दे देंगे। इसलिए तुम उनसे किसी प्रकार के दान की प्रतिज्ञा, न करना वरन् यही कहना कि मेरे पास दान देने को कुछ भी नहीं है।' यह सुन कर बलि कहने लगा—

"हे ब्रह्मन् ! अन्य के द्वारा जब मुझसे याचना की जावे तो मै कैसे कह दूँ कि मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है। फिर जिसमें भी उन देवेश्वर से जो समस्त संसार के अघों का हरण करने वाले है। जो प्रभु अनेक व्रतों और उपवासों द्वारा आधारित किये जाते हैं,वही मेरे सम्मुख आकार किसी प्रकार का दान माँगे तो इससे बड़ा जीवन-लाभ और क्या हो सकता है ? जिस परात्पर प्रभु की कृपा प्राप्त करने के लिए मनुष्य शौच आदि गुणों से समन्वित होकर तरह-तरह के यज्ञ किया करते हैं, वही देव साक्षात् होकर स्वयं मुझसे कहें कि 'कुछ दान दो' तो यह तो मेरा सब से बड़ा सौभाग्य ही समझा जायगा। मैंने पूर्व जन्म में कोई बड़ा सुकृत और तप किया होगा जिससे भगवान् मेरे पास आकर माँगे और मेंरे दिये हुए दान को ग्रहण करें। इससे अधिक महत्वपूर्ण पुण्योदय और हो ही नहीं सकता।'

'हे गुरुदेव ! मेरे घर पर समागत होने वाले प्रभु को मैं कैसे कह सकूँगा कि मैं दान देने के लिए कुछ भी नहीं रखता। मैं अपने प्राणों का त्याग कर दूँगा, पर यह कभी नहीं कह सकता कि मेरे पास देने के लिए कुछ भी नहीं है। मैं तो समझता हूँ कि यदि इस यज्ञ में वास्तव में भगवान् श्रीहरि स्वयं आकर मुझसे दान की याचना करते हैं तो मैंने अपना वाञ्छित फल प्राप्तकर लिया। अन्य किसी वस्तु की तो क्या बात उनको मैं अपना मस्तक भी दान में दे सकता हूँ। यह गोविन्द मुझसे यह तो कहें कि 'कुछ दान दो'—इससे अधिक श्रेष्ठ बात और क्या हो सकती है। "मेरे पास कुछ नहीं हैं' ऐसा तो मैंने आज तक अन्य याचना करने

वालों से भी कभी नहीं कहा, फिर उन भगवान् अच्युत से, जो मेरे घर पर माँगने आयेंगे, मैं कैसे निषेधात्मक वचन कहूँगा। धीर पुरुषों को यदि दान देने में विपत्ति भी सहन करनी पड़ती है तो वह श्लाघा के योग्य ही होती है। मेरे राज्य में कोई भी असुखी, दरिद्र और पीड़ित नहीं है। कोई ऐसा नहीं है जो अभूषित, उद्विग्न और प्रमाद से रहित हो। यह सब मैंने दानरूपी बीज का ही फल प्राप्त किया है। तो अब यह दान रूपी बीज यदि सबसे उत्तम पात्र जनार्दन प्रभु में गिरता है तो फिर इस जीवन में मैंने क्या नहीं प्राप्त कर लिया। मेरा यह दान तो विशिष्ट दान होगा जिससे देवगण भी सन्तुष्ट हो सकेंगे। यज्ञ के द्वारा आराधित भगवान् हरि मेरे ऊपर कृपा करने को उद्यत हो गये, इसीलिए वे स्वयं मुझे दर्शन देने यहाँ आ रहे हैं।"

राजा बलि भगवान् को दान देने के लिए ऐसा उत्सुक हो रहा था, कि वह उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं पढ़ने देना चाहता था। पर गुरु शुक्राचार्य इसे देवताओं की एक चाल मान कर दान देने का विरोध कर रहे थे। इसलिए बलि ने कहा—"जब भगवान् गोविन्द यहाँ दान माँगने आवें तो आप ऐसी कोई विरोधी बात न कहें, जिससे मेरे दान में विघ्न पड़ जाय। या तो आप उस समय यहाँ रहें ही नहीं अथवा कुछ न बोलें।" अन्य पुराणों में जो यह कहा गया है कि शुक्राचार्य अन्त तक राजा बलि को दान देने से रोकते रहें और अन्त में जब वह हाथ में जल लेकर दान का संकल्प लेने लगा तो वे जलपात्र की टोंटी में जा घुसे। इस पर वामन भगवान ने टोंटी में एक कुशा घुसा दी जिससे शुक्राचार्य का एक नेत्र फूट कर वे सदा के लिए काने हो गये। वामन पुराण में इसका कहीं भी जिक्र नहीं है। यह भी पुराणकारों द्वारा नई-नई तरह की कथा गढ़ लेने का एक उदाहरण है।

जब वामन भगवान ने यज्ञ मण्डप में पहुँच कर बलि को आशीर्वाद दिया तो उसने अपना राज्यकोश सर्वस्व उनके सम्मुख दान के लिए प्रस्तुत कर दिया। राजा हरिश्चन्द्र के उपाख्यान में तो विश्वामित्रजी को उसके राज्य का दान प्राप्त करने के लिए बड़े ढंग से काम लेना

पड़ा था, पर राजा बलि वामन भगवान् के पहुँचते हुए स्वयं कहा—

"हे भगवन् ! मेरे जहाँ जो स्वर्ण, रत्न, मणियों का भंडार, गज, महिष, गौ, वस्त्र, आभूषण, जलाशय, भूमि आदि हैं, इनमें से जो कुछ आपको अभीष्ट हो उस सबको देने को मैं प्रस्तुत हूँ।" इस पर वामन भगवान् ने तीन पैर भूमि माँगी। राजा ने बहुत कहा कि आप इतना छोटा दान, क्यों माँगते हैं! पर जब दान लेने पर तोन पैर भूमि नापने का अवसर आया तो भगवान् ने इतना बड़ा आकार धारण कर लिया कि उससे सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हो गया। उसका जो वर्णन 'वामन पुराण में दिया है, उससे भी प्रकट होता है कि यह बलि-वामन की कथा भगवान के विराटस्वरूप को प्रकट करने वाला एक उपाख्यान ही है। उसमें कहा है—

"जैसे ही राजा बलि के हाथ से दान के संकल्प का जल गिरा कि वह वामन स्वरूप अवामन हो गया और वहाँ पर उनका सर्व देवमय रूप दिखाई पड़ने लगा। चन्द्र और सूर्य दोनों उनके नेत्र थे, द्यौ शिर था,दोनों चरण भूमि थे, पावों की अँगुलियाँ पिशाच थे, हाथों की अँगुलियाँ गुह्यक थे। वामनदेव के जानुओं में विश्वेदेवा थे, जाँघों में साध्यगण स्थित थे। उनके अंगों में यज्ञ वमूत थे और लेखाओं में अप्सरागण थीं। अशेष-नक्षत्र ही उनकी दृष्टि थी और सूर्य की किरण उनके केश थी। उनके सब रोमों में महर्षिगण विराजमान थे। वामन-देव की वाहुएँ विदिशा थी तथा श्रोत दिशाएँ थीं। अश्विनी कुमार श्रवण थे और वायु ही नासिका थीं। इन देव की वाणी में सत्य विराजमान था और जिह्वा में सरस्वती देवी स्थित थी। ग्रीवा में देव माता अदिति नर विराजमान थे, पृष्ठ में वासुदेव थे, समस्त संधियाँ में मरुत देव थे। रुद्रगण इनके वक्षस्थल में विराजमान थे और महासागर ही उनके धैर्य थे। वामनदेव की कुक्षियों में समस्त वेद थे और मख जानुओं में स्थित थे।"

यह वर्णन किसी स्थूल शरीर का होने के बजाय इस समस्त

विश्व के विराट् रूप का ही है। ऐसा ही विराट्-स्वरूप वर्णन गीता के ११ वें अध्याय में भगवान् कृष्ण का कहा हुआ है। इसे एक भौतिक दृश्य के बजाय ज्ञान दृष्टि से किया गया वर्णन ही मानना अधिक बुद्धि संगत है। इस प्रकार के अधिकांश पौराणिक उपाख्यान धर्म तत्व और सृष्टि विज्ञान के मूल तत्वों को सामान्य बुद्धि वाले व्यक्तियों को समझाने के उद्देश्य से ही लिखे जाते हैं। यह प्राचीन लेखन शैली की एक प्रणाली थी। उस समय सामान्य जनता में पढ़ने-लिखने का रिवाज कम था और ज्ञान-विज्ञान की बातें भी थोड़े उच्च कोटि के व्यक्तियों तक ही सीमित रहती थीं। इसलिए सामान्य जनता कथा-वार्ता में उपस्थित होकर ही धर्म के नियमों की शिक्षा प्राप्त किया करती थी। आज भी यह प्रक्रिया देश के सभी भागों में न्यूनाधिक परिणाम में प्रचलित है, और इसके द्वारा समाज का अशिक्षित वर्ग किसी हद तक धार्मिक आचार विचार का ज्ञान प्राप्त करके अपने जीवन को नियमित और संयमित रखने में समर्थ होता है।

हम यह भी जानते हैं कि जब कथा-वाचकों में स्वार्थ भाव की प्रबलता हो गई तो उन्होंने धर्म-प्रचार के कार्य को गौण मानकर मुख्य उद्देश्य अधिकाधिक दक्षिणा प्राप्त करने का बना लिया। तब पुराणों में तीर्थ और व्रतों के माहात्म्यों का बहुत बड़े परिणाम में समावेश किया गया और उन अवसरों पर तरह-तरह के दान देने की प्रेरणा की गई।

हमने पुराणों के इन नवीन संस्करणों में इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि इनकी समस्त उपयोगी बातों की रक्षा करते हुए अनावश्यक बातों को यथासम्भव कम कर दिया जाय। 'वामन पुराण' अपेक्षाकृत छोटा है और इसमें स्वार्थ की दृष्टि से लिखी व्यर्थ की बातें भी कम हैं इसलिए इसके थोड़े श्लोक ही हमने कम किये हैं। हमको पूर्ण आशा है कि जनता में इस पुराण सीरीज का हार्दिक स्वागत होगा और इसके द्वारा पाठक हिन्दू-धर्म की जीवन को सार्थक बनाने वाली सद् शिक्षाओं को ग्रहण करेंगे।